भूमिका

भारत में लगभग 1913 से, फिल्म निर्माण आरंभ हुआ था। सर्वप्रथम फिल्म स्टूडियो की स्थापना की गई जहा धन की व्यवस्था के साथ फिल्म निर्माण किया जाता था। भारत मे भी स्टूडियो खोलो गए। प्रभात टॉकीज कलकत्ता , न्यू थिएटर मुंबई ,फिल्मीस्तान , फिल्मालय वी. शांताराम का राजकला मंदिर, राज कपूर का आर॰ के॰ स्टूडियो और सुनील दत्त का अजंता आर्ट्स। जब मूक फिल्मोंका दौर का था उस समय एवं उसके कई दिनो तक फिल्मे बहुत कम बजट मे बन जया करती थी श्वेत श्याम फिल्मों मे लागत बहुत कम आती थी, इसलिए निर्देशक,कौमरामैन,लेखक,सभी मासिक वेतन पर, किसी न किसी न स्टूडियो के मुलाजिम हुआ करते थे, नौकरी किया करते थे। सी॰ एन॰ त्रिवेदी ने संभवता पहली बार यूनिट बना कर शूटिंग की थी, लेकिन आज के युग मे जब फिल्मे 10 करोड़ से लेकर 100 करोड़ की लागत मे बनती है। तब धन की व्यवस्था के अनेक पात्र खुल गए है। वितरण से धन की व्यवस्था की जाने लगी है।

कुछ क्षेत्रीय अधिकार ऐसे भी है जो बिकते नहीं है जैसे की आजकल विदेशी व दक्षिण भारतीय बाज़ार काफी सुस्त है, इसलिए निर्माता इनकी कसर भी अन्य टेरेटरीओ से निकालना चाहेगा इस तरह से उसे 6 टेरेटरीओ को बेचना है। और यह कोशिश करनी होगी की प्रत्येक टेरेटरी कम से कम 20 से 25 लाख मे बिके। निर्माता वितरक से ज्यादा से ज्यादा

पैसा लेना चाहता है और वितरक कम से कम पैसा देना चाहता है। जब भी कोई निर्माता किसी फायनेंसर के पास जाता है तब वह सबसे पहले बजट प्लान मांगता है। निर्माता उसे संभाबित आयव्याय वाला अपना बजट प्लान देता है। फायनेंसर उसका अच्छी तरह से अध्ययन करता है वाद-विवाद करता है और अगर निर्माण के प्रस्ताव से सहमत हो जाता है। तो वह निर्माता को फिल्म बनाने के लिए धन दे देता है।

निर्माता ने बजट तो बना लिया फायनेंसर ने स्वीकार भी कर लिया लेकिन यह जरूरी नहीं की फिल्म उसी बजट मे बन जाए। अधिकांश फिल्मों मे देखा जाता है की बजट बढ़ जाता है। इसलिए निर्माता और फायनेंसर अतिरिक्त लागत को वितरको से बसूलने की कोशिश करते है। वे कभी इसमे सफल भी हो जाते है और असफल भी रहते है। लेकिन एक बात तय है की फिल्म की सफलता मे वितरण का बहुत बड़ा योगदान होता है। निर्माता को पैसा प्राप्त करने के लिए क्या क्या पापड़ बेलने पड़ते है यह तो भुक्त-भोगी ही समझ सकता है। आज के आधुनिक युग मे फिल्म कला और तकनीक की दृष्टि से कितनी भी श्रेष्ट क्यो न हो लेकिन उसकी सफलता सफल वितरण पर निर्भर करती है।

इसके अतिरिक्त फिल्म की शूटिंग पूरी हो जाने के बाद फिल्म के सम्पादन का काम शुरू होता है। पहले निगेटिव को द्रश्यों के हिसाब क्रमबार लगाया जाता है। जिसे सैटिंग कहते है। सैटिंग का काम पूरा हो जाने के बाद उसका पॉज़िटिव बनाया जाता है इसके बाद उसके साथ डबिंग करके या जिस डिवाइस पर आवाज रेकार्ड की गयी है उसे जोड़ा जाता है उसके फ़ायनल सम्पादन होता है इसके बाद फिल्म पर्दे पर आने के योग्य बन जाती है। फिल्म बन जाने के बाद उसे सेंसर प्रमाण-पत्र के लिए सेंसर बोर्ड को प्रस्तुत किया जाता है। सेंसर बोर्ड यदि किसी दृश्य को काट देता है या किसी दृश्य को बदलने का सुझाव देता है तो उस दृश्य की शूटिंग फिर से की जाती है कभी-कभी संपादक के सुझाव पर भी कुछ दृश्यों की पुन: शूटिंग करनी पड़ती है। सेंसर प्रमाण पत्र प्राप्त होने बाद फिल्म जनता को दिखने के लिए तैयार हो जाती है।

जब तक निर्माता सभी कलाकार और तकनीशियनों को उनके काम का पूरा भुगतान नहीं कर देता, तब तक फिल्म प्रयोगशाला से बाहर नहीं जा सकती है । विभिन्न कलाकारो और तकनीशियनों के संगठन इतने मजबूत और प्रभावशाली है की कोई भी निर्माता किसी का पैसा आसानी से हजम नहीं कर सकता और न ही किसी का भुगतान रुक सकता है ।

फिल्मों पर जो लागत आती है उसके हिसाब से उन्हे श्रेणियों मे विभाजित किया जाता है । बड़ी कास्ट बाली फिल्मों के निर्माण पर जिसमे मुख्य अभिनेता और अभिनेत्रीयां काम करते हैं। 40 से 50 करोड़ मे बन जाती है ऐसी फिल्मे ए श्रेणी मे आती है 50 से 100 करोड़ लागत वाली फिल्मे सुपरक्लास श्रेणी मे आती है । 10 से 20 करोड़ मे बी क्लास फिल्म बन जाती है । 5 से 10 करोड़ मे, सी क्लास फिल्म बन जाती। यह बड़ी अजीब बात है की फिल्मों का बिभाजन भी उन पर किए गय धन के आधार पर किया जाता है । उनकी विषय बस्तु और विशेषता के आधार पर नहीं किया जाता है । इसकी प्रमुख बजह फिल्मों की व्यावसायिक दृष्टि है इसलिए किसी नए आदमी के लिए फिल्म निर्माण मे प्रवेश करना मुश्किल होता है,क्योकि यह बहुत खर्चीला माध्यम है इसके अतिरिक्त नए आदमी को फायनेंसर भी धन देने मे कतराता है । इसके अलावा फिल्म निर्माण का कार्य इतना जटिल है की नए आदमी को उसके व्यवसायिक और तकनीकी पक्ष की बारीकियों को भी गहराई से समझना पड़ता है अपना पैसा लगा कर बहुत कम लोग फिल्म बनाते है। इसके लिए किसी फायनेंसर की ही जरूरत होती है । आज के आधुनिक युग मे फिल्म बनाने से ज्यादा कठिन है उसकी मार्केटिंग एवं रिलीजिंग हो गयी है क्योंकि फिल्म मे पैसा लगाना तो आसान है लेकिन निकालना बहुत मुश्किल हो गया है फिल्म का पूरा व्यवसाय फिल्म की मार्केटिंग और वितरण पर टिका है ।